P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-3* June- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

हिन्दी का दलित साहित्य : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

सियाराम मीणा
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बूंदी, राजस्थान

सारांश

दलित साहित्य हमारी सामाजिक संरचना और जाति आधारित मानसिकता तथा उसके दुष्परिणामों की व्याख्या का साहित्य है। दलित साहित्य में दलित साहित्यकारों ने अपने भोग गये यथार्थ को साहित्य की विविध विधाओं में अभिव्यक्त किया है। दलित साहित्य के अध्ययन का तात्पर्य ही है कि या तो हम हमारे समाज के विकारों, रूढ़ियों, समाज विशेष के लिए की गई यातनापूर्ण व्यवस्था का अध्ययन करते है या उस यातना में दर्द भोगते मानव का अध्ययन करते हैं जिसकी यातना, अमपान, और शोषण का कोई अंत नहीं है। यद्यपि जिसे आज हम दलित साहित्य कहते हैं, मराठी भाषा का दलित साहित्य उसका मूल उत्स व प्रेरक है तथापि हिन्दी में दलित साहित्य या तत्संबंधित संवेदना की जड़े हम कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि संत कवियों की कविता में ढूंढ़ें तो निरर्थक प्रयास नहीं होगा। उन कवियों ने समाज में व्याप्त छुआछूत, अंधविश्वास, जाति–पांति, पण्डे–पुजारियों के चंगुल, शास्त्रों का विरोध, जातिगत भेद–भाव, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि गलित तथा मानवता विरोधी परम्पराओं को नकार कर जाति और मजहब से हटकर मानवीय स्वतंत्रता तथा समानता का आह्वान किया था। इन संतों ने पहली बार साहित्य को सामाजिक आलोचना का विषय बनाकर साहित्य एवं समाज में नई चेतना और जाग्रति का प्रयास किया था तथा सामान्य आदमी को सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियो तथा जातिवाद के जहर पर भारी प्रहार कर स्वत्व का ज्ञान कराया था।

हिन्दी में अब मुख्यधारा के साहित्य के सामाजिक सौंदर्यबोध से मोहभंग होने लगा है। दलित, आदिवासी और स्त्री विमर्श के बहाने जो साहित्य हिन्दी जगत में आया है; उसने मुख्यधारा के साहित्य के सामाजिक सौंदर्यबोध पर न केवल प्रश्नचिह्न लगाया है अपितु भारी प्रहार किया है। आज दलित साहित्य ने विस्तृत होकर हाशिए को छोड़ दिया है। वह मुख्यधारा की ओर अग्रसर है। लेकिन समाज और राजनीति में दलितों को वह सम्मान नही मिला है, जिसका वह हकदार है। आज भी ऐसी घटनाएं आये दिन देखने–सुनने को मिलती है, जिन पर सहसा विश्वास नही होता। दलित उत्पीड़न, हिंसा और शोषण की घटनाएं अखबारों व समाचार चैनलों पर सुर्खियां बटोरकर तिरोहित हो जाती हैं। लेकिन समाज में कोई हलचल पैदा नहीं होती है। दलित साहित्य का लक्ष्य समाज को तोड़ना या हिंसा फैलाना नहीं है और न ही किसी को अपने अधिकारों से वंचित करना है। वह तो अपने अधिकार और हक की मांग करता है। साथ ही मनुष्य में व्याप्त भेद–भाव के कुत्सीत विकारों को बाहर कर समाज में समानता और स्वतंत्रता का वातावरण निर्मित करना चाहता है। वस्तुतः वह मनुष्य के अन्दर मानवता विरोधी समस्त विकारों और पूर्वाग्राहों को निकाल देना चाहता है जिससे कि मनुष्य–मनुष्य को समान समझने और सामाजिक न्याय की अवधारणा विकसित हो सके। हिन्दी में दलित साहित्य न केवल प्रचुर मात्रा में सामाने आ रहा है अपितु उसे मान्यता भी मिली है। आज दलित साहित्य अपने जिस मुकाम पर है, उसे किसी की स्वीकारोक्ति की आवश्यकता नहीं है। वह अपने आप में स्वयं सिद्ध है। निश्चय ही दलित विमर्श और दलित लेखन ने हिन्दी साहित्य को न केवल समृद्ध किया है अपितु उसे लोकतांत्रिक स्वरूप देकर पूर्णता प्रदान की है।

मुख्य शब्द : दलित, समाज, परंपरा, जातिवाद, समाजशास्त्र, सौंदर्यबोध, अत्याचार, अपमान व शोषण, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, अधिकार, दलित साहित्य।

प्रस्तावना

कबीर आदि संतों ने पहली बार साहित्य को सामाजिक आलोचना का विषय बनाकर साहित्य एवं समाज में नई चेतना और जाग्रति का प्रयास किया था तथा सामान्य आदमी को सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियो तथा जातिवाद के जहर पर भारी प्रहार (जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाय.., जाति ने पूछो...) कर स्वत्व का ज्ञान कराया था। लेकिन रीतिकाल में साहित्य की यह सामाजिक चेतना तिरोहित हो गई और सामंति तथा दरबारी संस्कृति के आगोश में आकर कविता श्रृंगार के पंक में सन गई। यद्यपि जिसे आज हम दलित साहित्य कहते हैं, मराठी भाषा का दलित साहित्य व आन्दोलन उसका मूल उत्स व प्रेरक है तथापि हिन्दी में दलित साहित्य या तत्संबंधित संवेदना की जड़े हम कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि संत कवियों की कविता में ढूंढ़ें तो निरर्थक प्रयास नहीं होगा। उन कवियों ने समाज में व्याप्त छुआछूत, अंधविश्वास, जाति–पांति, पण्डे–पुजारियों के चंगुल, शास्त्रों का विरोध, जातिगत भेद–भाव, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विगलित तथा मानवता विरोधी परम्पराओं को नकार कर जाति और मजहब से हटकर मानवीय स्वतंत्रता तथा समानता का आह्वान किया था। इन संतों का साहित्य जातिवादी दंभ पर चोट करने वाला था। यथा–**तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद्र, हम कत लोहू तुम कत दूध।** साथ ही यह भी कह दिया कि **एक जोति थे सब जग उपना, को ब्राह्मण को सूदा।** आधुनिक युग में बाबा भीमराव अम्बेडकर, महात्मा जोतिराव फूले आदि ने जातिवाद के जाल में फंसते दलित समाज में चेतना का संचार कर अपने अधिकारों और हक के लिए लड़ने की चेतना समाज में फेलाई। भारतीय समाज में दलित उत्पीड़न वर्तमान में जितना त्रासद है, भूतकाल में उससे भी अधिक घृणित और पीड़ा दायक था। जिन्हें आज दलित कहते हैं; इनमें कुछ की स्थिति तो इस तरह होती थी कि वे घंटी बाँधकर चलें। घण्टी की आवाज सुनकर गैर दलित घर से बाहर न निकलें। उनकी छाया गैर दलितों पर न पड़े। दलित जहां से निकलें, वहां गंगाजल छिड़का जाए। अम्बेडकर ने मद्रास प्रेसीडेंसी के तिन्नेवेली जिले की पुरादा वन्नान जाति का जिक्र किया है जिन्हें दिन में बाहर निकलने की इजाजत नहीं थी। इन्हें देखने से सवर्ण अपवित्र हो जाते हैं...जातिवाद की कठोरता का इतिहास इस देश में लम्बा चला है।'[1] यहां की सामाजिक व्यवस्था में सभी के लिए समानता का विधान नही है। ब्रह्मण और गैर ब्राह्मण के लिए विधान कानून अलग–अलग है। ब्राह्मण शासित महाराष्ट्र में गरीबा लो सबसे अधिक संतप्त व दग्ध थे। हर अछूत को पूना की गलियों में से पत्तियों की टहनी अपनी कमर में बाँधकर व एक बर्तन गर्दन से लटकाकर, जिसमें वह थूक सके, आना–जाना पड़ता था।[2] हमारे अनेकानेक ग्रंथों ने भी इस व्यवस्था को विधिसम्मत बनाने में योगदान दिया है यथा मनुस्मृति। आधुनिक लोकतांत्रिक युग में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना युक्त संवेदना और अनुभूतिपरक साहित्य हमारे सामने आता है लेकिन इसमें भी दलित, आदिवासी और स्त्री के हिमायती साहित्य का अभाव ही रहा। 60–70 के दशक में मराठी साहित्य और दलित आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श की दस्तक सुनाई देती है। 90 के बाद हिन्दी में यह चेतना क्रांतिकारी रूप में विमर्श के धरातल पर पहुंचकर दलित साहित्य की ठोस जमीन तैयार करती है। वस्तुः 'दलित आंदोलन और दलित चेतना वर्तमान दौर के भारतीय संदर्भ में एक ऐसा बौद्धिक और सामाजिक मुद्दा है जो हमें हमारी सारी व्यवस्था और मानसिकता को फिर से पुनर्व्याख्यायित और पुनर्निर्मित करने के लिए विवश कर रहा है। जिस व्यवस्था, परम्परा, धर्म और संस्कृति पर हम हजारों वर्षों से गर्व करते आ रहे थे। उसके विषम विरोधाभाषों, मानवता एवं समानता विरोधी तत्वों को आज दलित चेतना और दलित साहित्य ने पहली बार प्रश्नों से भरे कठघरे मे खड़ा कर दिया है।'[3]

अध्ययन का उद्देश्य

दलित साहित्य हमारी सामाजिक संरचना और जाति आधारित मानसिकता तथा उसके परिणामों की व्याख्या का साहित्य है। दलित साहित्य में दलित साहित्यकारों ने अपने भोग गये सत्य को साहित्य की विविध विधाओं में अभिव्यक्त किया है। दलित साहित्य के अध्ययन का तात्पर्य ही है कि या तो हम हमारे समाज के विकारों, रूढ़ियों, समाज विशेष के लिए की गई यातनापूर्ण व्यवस्था का अध्ययन करते है या उस यातना में दर्द और अपमान भोगते मानव का अध्ययन करते हैं जिसकी यातना और शोषण का कोई अंत नहीं है। दूसरी बात यह कि विकास की कई परतों से ढ़क चुके हमारे समाज की असलियत आज भी वही है। किंचित रूप भले ही बदल गया हो। जिसके कारण दलित समस्या ने और भी अधिक विकराल रूप ले लिया है। अतः दलित साहित्य का अध्ययन, विश्लेषण तथा समाज की विसंगतियों का बारीकी से अध्ययन और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। आज दलित विमर्श सभी विमर्शों के केन्द्र में है। दलित साहित्य बराबर लिखा जा रहा है तथा दलित समाज की आवाज बनकर बोल रहा है। अतः दलित साहित्य पर आज शोध की निरंतर आवश्यकता है। यद्यपि इस दिशा में जिस स्तर पर साहित्य लिखा जा रहा है, उसी गति से आलोचना और शोध कार्य हो रहा है। लेकिन फिर भी इस गतिमान साहित्य पर समीक्षा और शोध रिक्तता बनी हुई है। इस शोध के माध्यम से हम दलित साहित्य के समकालीन परिदृश्य को जान पायेंगे तथा दलित साहित्य से जुड़े सवालों से भी रूबरू हो सकेंगे।

साहित्यावलोकन

दलित साहित्य पर निरंतर कार्य हो रहा है। रचनात्मक और आलोचनात्मक दोनों ही पक्षों में दलित साहित्य ने सक्षम विस्तार किया है। इस दिशा में भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य सं. पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, वााणी प्रकाशन 2003 महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें विविध विद्वानों के आलोचनात्मक एवं शोधात्मक लेखों दलित साहित्य व दलितों के विविध प्रश्नों को समावेश किये हुए हैं। दलित साहित्य का शौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधकृष्ण प्रकाशन, 2005 यह पुस्तक दलित साहित्य आन्दोलन व उसकी रचनात्मकता वसे जुड़े सवालों व महत्वपूर्ण बिन्दुओं को व्याख्ययित कर साहित्य पूर्वाग्रह से ग्रसित पूर्व स्थापित मानदण्डों को चुनौति देती

है। भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास, मोहनदास नैमिशराय, राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.सं. 2017, दलित साहित्य की इस मानक पुसतक में दलित समाज, दलित अस्मिता, व दलित आन्दोलन का दस्तावेजपरक व तार्किक विश्लेषण है। अन्य पुस्तकों में महात्मा जोतिराव फुले : दर्शन और चिन्तन, डॉ.योगमाया, राजस्थान ग्रंथ अकादमी प्र.सं. 2004पृ.सं.52), दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य,दीपक कुमार पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन प्र.सं. 2017 दलित साहित्य का शौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिम्बाले वाणी प्रकाशन प्र.सं.2005, दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन(गाजियाबाद)प्रा.सं. 2015, दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार सं. रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउण्डेशन के लिए (नव लेखन प्रकाशन द्वरा प्रकाशित, हजारीबाग–झारखण्ड) वर्ष 2000 व पत्र–पत्रिकाओं में कथादेश, युद्धरत आम आदमी, हंस आदि प्रमुख है। इन पुस्तकों में दलित लेखन की सम्पूर्ण अवधारणा, सवालों और प्रतिमानों को प्रस्तुत किया गया है तथा ये पुस्तकें शोधार्थियों व पाठकों के लिए एक नई समझ को पैदा करती है। प्रस्तुत आलेख में विषयानुरूप मौलिकता और नवीनता को ध्यान में रखकर दलित साहित्य का विश्लेषण किया गया है तथा इस कार्य में दलित साहित्य की शोध रिक्तता को पूर्ण करने का मौलिक प्रयास होगा।

हिन्दी का दलित साहित्य एवं परिदृश्य

हिन्दी में अब मुख्यधारा के साहित्य के सामाजिक सौंदर्यबोध से मोहभंग होने लगा है। दलित, आदिवासी और स्त्री विमर्श के बहाने जो साहित्य हिन्दी जगत में आया है; उसने मुख्यधारा के साहित्य के सामाजिक सौंदर्यबोध पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। आज दलित साहित्य ने विस्तृत होकर हाशिए को छोड़ दिया है। वह मुख्यधारा की ओर अग्रसर है। लेकिन समाज और राजनीति में दलितों को वह सम्मान नही मिला है, जिसके वे हकदार हैं। आज भी ऐसी घटनाएं आये दिन देखने–सुनने को मिलती है, जिन पर सहसा विश्वास नही होता। दलित उत्पीड़न, हिंसा और शोषण की घटनाएं अखबारों व समाचार चेनलों पर सुर्खियां बटोरकर तिरोहित हो जाती हैं। शेष समाज में कोई हलचल पैदा नहीं होती है। दलितों को नंगा करके घूमाना, छुआछूत करना, मारना–पीटना, जबरन बैगारी करवाना, शोषण, जमीन जायदाद हड़पना, दलित स्त्रियों पर अत्याचार, सार्वजनिक स्थानों से पानी पीने या प्रयोग करने से मना करना, सम्मान से जीने के किये गये क्रिया–कलापों पर रोक आदि। दलित दुल्हा घोड़ी पर बैठ जाये जो खेर नहीं, उसको ही नहीं सारी बिरादरी को इसका दण्ड भुगतना पड़ता है। आये दिन ये घटनाएं अखबारों में ही स्थान पाकर गुम हो जाती है। शासन–प्रशासन, ज्ञान–विज्ञान, वैश्विक कारोबार व निजी क्षेत्र से दलितों को वंचित रखना ऐसे प्रत्यक्ष–परोक्ष तथ्य हैं जो आज भी दलित समस्याओं के उभरते नये स्वरूपों की ओर इंगित करके दलित साहित्य की उपस्थिति और अनिवार्यता को घोषित करते हैं। बजरंग बिहारी तिवारी ने लिखा है कि जातिवादी समाज की क्रुरता में कमी नही आयी है, दलितों पर अत्याचार बढ़े हैं, उनका लगातार दमन होता रहा है। आजादी के ये छः दशक प्रमाणित करते हैं कि वर्णवादी समाज अपनी सोच में अपेक्षित बदलाव लाने को तैयार नही हैं, स्थिति ऐसी पैदा कर दी गई है कि आम दलित बेहतर जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता, उसे अपना अस्तित्व बचाना ही भारी पड़ रहा है। ...जब भी कोई दलित समुदाय अपनी शर्तों पर जातिवादी मर्यादाओं को नकारते हुए जीने की कोशिश करता है तभी उसे नेस्तनाबूद करने का उद्यम शुरू हो जाता है। जातिवादी समाज के कुकृत्यों को एक बारगी देखें तो दलित नरसंहार की एक लम्बी सूची तैयार हो जाती है।''[4] शेष समाज में ऐसी घटनाओं पर चुप्पी कई तरह की आशंकाएं पैदा करती है। कविता का यह दृश्य दलित जीवन दशा और दंश के लिए पर्याप्त जान पड़ता है। 'भरने नही देंगे पानी कुंए पर/नही देंगे खेती पर काम,/खुली नही तुम्हारे लिए हमारी दुकाने../कितना महान मेरा भारत।/यह है '**बहिस्कृत भारत/** झाड़ू मारते, मैला ढोते थक गये हाथ, मैले कपड़े मैला बदन मैले हाथ/काई न बैठने देता अपने साथ/गंदी गाली देते देते करते बात,/ यह है **मल मूत्र ढोता मैला भारत।**[5]

दलित साहित्य की विषय वस्तु परम्परागत समाज व्यवस्था की चीरफाड़, उसमें उपजते अत्याचारों के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति है। दलितों को हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे नीचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता, स्वतंत्रता आदि मानव अधिकारों से वंचित रखा गया। दलित साहित्यकारों ने अपनी आप बीती घटनाओं, भोगी गई पीडाओं, समाज की यथार्थ स्थिति को बयान करने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया। उन्होंने कथा, कहानी, कविता, उपन्यास, महाकाव्य, आत्मकथा, जीवनी, निबंध, नाटक, संस्मरण, साक्षात्कार, लघुकथाओं, लेखों, आलोचना, पत्र–पत्रिकाओं आदि के माध्यम से न केवल अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति की है अपितु समूचे समाज और देश की राजनीति व व्यवस्था को इस दिशा में सोचने के लिए विवश किया है। दलित साहित्य ने बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन और विचारों से प्रेरणा ली है क्योंकि उनके विचारों ने दलितों में चेतना का संचार किया है। उनका आदर्श प्रेरक व्याक्य – **शिक्षित बनो, संगठित बनों, संघर्ष करों**'' ने दलितों में मनुवादी सोच के खिलाफ लड़ने के लिए ताकत दी है। जब तक दलित बोलेगा नहीं, उसकी पीड़ी किसी को दिखाई नहीं देगी और न ही सवर्ण समाज बैनकाब होगा। इसलिए दलितों के लिए साहित्य रचना ऐसा मंच बना है कि वह दलित समाज में नई चेतना और क्रांति का सूत्रधार बन गया। प्रसिद्ध कवि दामोदर मोरे **'फूलन देवी'** नामक कविता में लिखते हैं कि–**'फूलन देवी से मैंने कहा/अपनी आँखों का अंगार दो/वह बोली : बेटा ! अंगार किसी से मांगो मत/स्वयं को ही अंगार बना दो/फूलन देवी से मैंने कहा/अपनी नीचे रखी बन्दूक मुझे दे दे/बह बोली– बेटा यह युद्ध युग नहीं, बुद्धयुग है/अल्फाज को ही प्रक्ष्येपात्र बना दो।''**[6] दलित वर्ग ने सदियों तक इन्तजार करके देख लिया है कि उच्च वर्ग, यह सनातनी परम्परा कितनी संवेदन शून्य है। यहां तो इन्सानियत और मानवीय संवेदना का झरना ही सूख गया है। यथा– **पड़ा है अकाल संवेदना का/इस भू पर/सूख गया**

है/इन्सानियत का झरना/इस भू पर।[7] दलित साहित्यकारों ने साहित्य की क्रांति–चेतना की शक्ति को बखूबी पहचाना है। अपमान, हिंसा, शोषण, अन्याय और अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति जब कविता में ढ़लता है तो वह क्रांतिकारी साहित्य का निर्माण करता है। इसलिए दलित कवियों व लेखकों के लिए साहित्य अंगार है, प्रक्षेपात्र है, हथियार है।

दलित साहित्य का लक्ष्य समाज को तोड़ना या हिंसा फैलाना नहीं है और न ही किसी को अपने अधिकारों से वंचित करना है। वह तो अपने अधिकारों और हक की मांग करता है। साथ ही मनुष्य में व्याप्त भेद–भाव के कुत्सीत विकारों को बाहर कर समाज में समानता और स्वतंत्रता का वातावरण निर्मित करना चाहता है। वस्तुतः वह मनुष्य के अन्दर मानवता विरोधी समस्त विकारों और पूर्वाग्रहों को निकाल देना चाहते हैं जिससे कि मनुष्य–मनुष्य को समान समझने और सामाजिक न्याय की अवधारणा विकसित हो सके। यथा– **मैं/एक/भिखारी हूँ/चौराहे पर खड़ा/मांग रहा हूँ/आपके विकारों की भीख/है कोई दाता दे दो.../इस घने अंधेरे को/रोशनी के फूल दे दो।**[8] दलित साहित्य क्रांति के बीच मानवता, समरसता और बंधुत्व का बहता हुआ निर्मल झरना है। दलित साहित्य सामाजिक स्वतंत्रता, बंधुत्व और मानवता का पोषक साहित्य है। बाबूराव बागुल ने लिखा है कि ''दलित साहित्य में भाषिक, प्रांतीय, राष्ट्रीय दुराभिमान नहीं है। दलित साहित्य मनुष्य को सर्वोपरी मानता है। अतः मनुष्य की महानता के लिए जो कुछ भी अच्छा हो रहा है, वह सब कुछ दलित साहित्य का है। भारतीय विचार, समाज और साहित्य–परम्परा वर्ण–व्यवस्था से संबद्ध है। इस परम्परा को दलित साहित्य पूर्णतया नकारता है।''[9] दलित साहित्य परंपरागत साहित्य के सामने एक जबरदस्त चुनौति बन कर आया है। परम्परागत साहित्य के स्थापित प्रतिमानों को ध्वस्त करके साहित्य के नये प्रतिमान, मापदण्ड और अलग सौंदर्यशास्त्र गढ़ने का कार्य दलित चिन्तकों व साहित्यकारों ने किया है। पिछले तीन–चार दशक से दलित साहित्य ने दलितों की गलीच, दबी–कुचली, प्रताड़ित और शोषित जिंदगियों को विमर्श की मुख्यधारा में लाकर खड़ा किया है। दलित साहित्य बेशक साहित्य की पारम्परिक विषय वस्तु के स्थान पर ऐसे विषयों को उठाता है जो अब तक नजर अंदाज किये जाते रहे हैं। सदियों से हाशिये पर पड़े रहने वाले, अपमान का दंश झेलन वाले और सिर्फ प्रताड़ना सहने वाले तबके को मनुष्य ही नहीं माना गया हो ऐसे विषय को केन्द्र में लाने का श्रेय दलित साहित्य को जाता है।...भारतीय साहित्य को सही मायने में दलित साहित्य ने लोकतांत्रिक मूल्यों से सज्जित किया है।''[10] साहित्य की यह लोकतांत्रिकता सैकड़ों वर्षों से गायब थी। दलित विमर्श और साहित्य ने निश्चय ही साहित्य के प्रति यह उपकार किया है। दलित साहित्य के बिना साहित्य की यह लोकतांत्रिता अपूर्ण और अधूरी है। दलित साहित्य ने 'वर्तमान दलित यथार्थ को व्यक्त कर 21वीं सदी की नयी सोशल इंजीनियरिंग के बारे में साचने को मजबूर कर दिया हैं। यहाँ साहित्य मनोरंजन, बौद्धिक एवं भावात्मक विलास की वस्तु नही है; महज कलात्मक अठखेलियाँ और काल्पनिक अंदाज नही है या किसी संगमरमर के प्रासादों में बैठी विरहणी नायका का रूदन नही है बल्कि उस मानव का दर्द है जो सदियों से इस सामाजिक ,राजनीतिक ,धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में अमानविय स्टेटस पाकर अपमान और घुटन भरी जिंदगी जीने को विवश रहा है और जिसे आज भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सम्मान, स्वतंत्रता और समानता नही मिली और जो अधिकार और बराबरी के लिए तड़प रहा है।'[11] दलित साहित्य ने साहित्य के समाजशास्त्र की नई अवधारणा विकसित की है। दलित साहित्य की सामाजिक अवधारणा डॉ.भीमराव अम्बेडकर के सामजिक चिन्तन से पूर्णतः प्रभावित है। वस्तुतः ''अम्बेडकर समाजशास्त्र भारत के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन और उसकी सामाजिक–संरचनाओं का वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर विश्लेषण करके साहित्य के समाजशास्त्र की आधारशीला रखता है। ...वैसे भी भारत में सामाजिक अस्मिताएं और व्यक्ति की पहचान जाति के आधार पर ही बनती–बिगड़ती है। इसलिए हिन्दुत्व का जातिशास्त्र विभिन्न संस्थानिक केन्द्रों द्वारा जाति व्यवस्था को ही मजबूत आधार प्रदान करता है; तो अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र हिन्दुत्व के विभिन्न सांस्थानिक केन्द्रों को ध्वस्त करके जातिविहिन समाज के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। सजातीय सामाजिक संबंधों को विजातीय सामाजिक संबंधों में रूपांतरित करके ही हम जाति व्यवस्था का खात्मा कर सकते हैं।''[12] दलित साहित्य जातिवादी समाजशास्त्र का खण्डन करके समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व आदि जनतांत्रिक मूल्यों और अधिकारों के द्वारा नए समाज और पुनर्निर्माण का भी मार्ग प्रशस्त करता है। दलित साहित्य हमारी सामाजिक संरचना के दोषों और विकारों को दूर करने का आह्वान करता है। कवि दामोदर मेरे लिखते हैं कि **''आप कहते हो/मैं कविता लिख रहा हूँ..../मैं तो अपने अन्दर की/रोशनी बिखेर रहा हूँ/आप कहते हो–/मैं कविता लिख रहा हूँ..../मैं तो रास्ते से शूल हटा रहा हूँ।'**[13] दलित साहित्य केवल सवर्णों के विरोध तक सीमित नहीं है; वह दलित समाज में व्यप्त रूढ़ियों और अंधविश्वासों का भी विरोध करता है तथा दलित समाज में फैली रूढ़ियों और अंधविश्वासों को मिटाने के लिए समाज में जाग्रति फैलाने का कार्य करता है। सोहनपाल सुमनाक्षर ने अपनी कविता **'पूर्वजन्म का ढकोसला'** में लिखा है कि **मेरे परदादा मर गये झूटन खाते/उतरे चिथड़े पहनते/खेत बोते–जोतते/इसे पूर्व जन्मों का फल मानते–मानते/और जमीदार/फूलता गया/फलता गया/जमींदार का वंश/बढ़ता गया/आकाश बेल की तरह/इनका खून चूसते–चूसते/धर्म का भय दिखाकर/नीच कर्मों का फल बताकर..../पर/अब में पूर्वजन्म नही वर्तमान देखता हूँ''**[14] ओम प्रकाश वाल्मीकि **'बस बहुत हो चुका'** कविता में अपनी पीड़ा और घुटन के साथ मानव होने के नाते मानवता के अधिकार की बात करते हैं। वे लिखते है कि **''कभी नही मांगी बालिश्त भी जगह/नहीं मांगा आधा राज भी/मांगा है सिर्फ न्याय..../थोड़ा–सा बचपन/थोड़ा सा अपनापन/जब–जब भी कुछ मांगा/वे गोलबंध होकर टूट पड़े/मैं अवाक''**[15]

दलित साहित्य पर यह आरोप लगाया जात है कि संस्कृत और सभ्य शब्दों का प्रयोग नही किया जाता है तथा गालि की भाषा का प्रयोग किया जता है। दलित लेखकों, आलोचकों ने इस सवाल का बखुबी जवाब दिया है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पीड़ा, दंश, अपमान, घुटन, हिंसा, दुत्कार, शोषण झेलने वाले व्यक्ति की भाषा कभी फूल नहीं बरसा सकती। कंवल भारती ने अपनी कविता में लिखा है कि **''क्रांति की भाषा सुन्दर नही होती/जैसे कि अखबार/जो तुम्हें रोज गुदगुदाते हैं/ये बताओ बलात्कार की शिकार/तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी।''**[16] ये काव्य पंक्तियां एक ओर दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र तथा अभिव्यक्ति शैली के सभी प्रश्नचिह्नों का हल करती है वहीं अपने अन्दर की क्रांति भावना को भी व्यक्ति करती है। हमारे परम्परागत साहित्य ने भाषा और शब्दों के साथ खिलवाड़ की है। या कि उसका गलत इस्तेमाल किया है या दुरूपयोग। कवि दामोर मोर आगाह करते हुए कहते हैं कि कविवर/शब्द को पछाड़ो मत/उसको खदेड़ो मत/नही तो/आशय का/आईना टूट जायेगा।[17]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुख, वेदना से साक्षात्कार करता है, वह आनन्ददायी कैसे हो सकता है? दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है, इसलिए उसकी श्रेष्ठता शब्दजीवी नहीं है, न शाब्दिक चमत्कारों तक सीमित है। अर्थगांभीर्य दलितों का स्वीकृत जीवन मूल्य है। जिस पर दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र टिका है।[18] वस्तुतः दलित साहित्य का सौंदर्यबोध पूर्णता के साथ मनुष्य के निजत्व को पालने वाली अदम्य आकांक्षाओं को निरंतर बलवान करती है। यह सौंदर्यबोध सामाजिक संघर्ष और क्रांति का है, जो मनुष्य को दासवृत्ति, जड़ता, जघन्यता, छुआछूत, ऊँच–नीच, शोषण, उत्पीड़न आदि से जूझने की शक्ति प्रदान करता है। दलित साहित्य का सौंदर्य बोध समग्र मानवता का पोषक और हिमायती है। मानवीय गरिमा और अस्मिता, स्वतंत्रता और समानता उसके केन्द्र में है। 'सामाजिक मूल्य ही दलित साहित्य के सौंदर्य मूल्य है।''[19] दलित साहित्य के अध्ययन से गुजरने पर हमें पता चलता है कि हमारा समाज और उसकी व्यवस्था व मान्यताएं कितनी घृणित तथा स्वतंत्रता व समानता विरोधी है। दलित साहित्यकारों ने अपनी आप बीती तिलमिला देने वाली सच्चाई को सबके सामने रखकर समाज में व्याप्त जातिगत भेद–भाव व घृणा से पर्दा उठाया है। आज भी दलित साहित्य को तो स्वीकारोक्ति मिल गई है, पर दलित को नहीं। वह आज भी पद–पद पर ठगा जाता है। घृणा और नफरत का भाव आज भी कायम है। दलित साहित्य दलित समाज के खिलाफ हो रहे अन्याय को उजागर करने और मिटाने का विनम्र प्रयास है। इसमें विद्रोह, क्रांति तथा परिवर्तन की ताकत है।

राजेन्द्र यादव ने दलित साहित्य और दलित विमर्श की अनिवार्यता, आवश्यकता और औचित्य पर तल्ख टिप्पणी करते हुए लिखा है कि दलित साहित्य लोकतंत्र, हर नागरिक को समान अवसर, न्याय और स्वतंत्रता देने की प्रतिज्ञा करता है। दलित समुदाय को यदि अब भी न्याय, अवसर और स्वतंत्रता से वंचित करेंगे तो एक तो यह संभव नहीं है, दूसरे संविधान इसे बर्दास्त नहीं करेगा। आज वे राजनीति से समाज तक इतने सशक्त और मुखर हो चुके हैं कि वे निर्णायक स्थिति में हैं मायावती इस बात का प्रमाण हैं। यदि हमारा साहित्य इनके लिए जगह नहीं छोड़ता है तो वह शीघ्र ही अप्रासंगिक हो जायेगा। मैं बार–बार लिख चुका हूँ कि हमारा अब तक का साहित्य केवल एक खास वर्ग का लिखा और एक खास वर्ग को संबोधित साहित्य है। साहित्य का मतलब यदि सहित है तो उसको समाहित करना चाहिए। अब समय आ गया है कि अभी तक चले आये इस सवर्ण साहित्य को अपनी कमी और अधूरेपन का प्रायश्चित करना चाहिए। दलित केवल सुविधा वंचित ही नहीं बल्कि सामाजिक रूप से बराबरी के सम्मान से भी वंचित है। वे दलित इसलिए हैं क्योंकि हमने उन्हें न ज्ञान दिया न सम्मान, इससे अधिक अमानवीयता और क्या होगी? हमें खुद को सहनशील बनाते हुए दलित विमर्श को मुख्यधारा में स्थान देना चाहिए। ऐसा करके हम उन पर कृपा नहीं करेंगे।''[20] यह दलित साहित्य के औचित्य और अनिवार्यता का सार्थक बयान है।

हिन्दी में दलित साहित्य न केवल प्रचुर मात्रा में सामाने आ रहा है अपितु उसे मान्यता भी मिली है। आज दलित साहित्य अपने जिस मुकाम पर है, उसे किसी की स्वीकारोक्ति की आवश्यकता नहीं है। वह अपने आप में स्वयं सिद्ध है। उसका औचित्य और आवश्यकता किसी की मोहताज नहीं है। 1914 में हीरा डोम की **'अछूत की शिकायत'** से लेकर आज तक दलित साहित्य और साहित्यकारों की लम्बी–चौड़ी परम्परा बन गई है। जैसे– ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, सोहनपाल सुमनाक्षर, श्योराजसिंह बैचेन, जयप्रकाश कर्दम, डॉ.धर्मवीर, डी.आर.जाटव, माता प्रसाद, बलवीर मधोपुरी, बंचित कौर, हजारी, प्रो.श्याम लाल, कौसल्या बैसंत्री, मोहनदास नैमिशराय, डॉ.एन.सिंह, दयानन्द बटरोही, मलखान सिंह, कुसुम वियोगी, कंवल भारती, सुशीला टाकभौरे, रजतरानी मीनू, अजय नावरिया, रत्नकुमार सांभरिया, विपिन बिहारी, तेजपाल सिंह, एस.आर.विद्रोही, पुरूषोत्तम सत्येप्रेमी, दामोदर मोरे, मनोज सोनकर, दयानन्द बटरोही, कुसुम मेघवाल, जियालाल आर्य, टी.पी.राही, रूपनारायण सोनकर, अरविन्द कुमार राही, प्रेम कपाड़िया, कैलाशचन्द चौहान, एस.आर.हरनोट, उमराव सिंह जाटव, मनोज सोनकर, डॉ. भगवानदास, राजपाल सिंह 'राज' आदि कई साहित्यकार दलित साहित्य में योगदान दे रहे हैं। दलित साहित्य और साहित्यकार पर आज बराबर विमर्श, मंथन, समीक्षा और शोध हो रहे हैं। शोधकर्ताओं के लिए परंपरागत साहित्य घिसा–पिटा और पिष्ट–पोषण सा लगता है। यद्यपि जहां दलित को समाज में एक खास तरह की मानसिकता का दंश झेलना पड़ रहा है वैसे ही साहित्य के विविध क्षत्रों में भी दलित साहित्य को कम हिकारत से नहीं देखा जाता है। प्रश्न अब भी उठते है। और यह कहा जाता है कि जब सवर्ण साहित्य में सब कुछ है तो अलग से दलित साहित्य का विवाद खड़ा करके यह अलगाववाद क्यों। लेकिन इतना जरूर है कि दलित साहित्य सभी बाधाओं को पार कर अपने मुकाम पर स्थापित सा हो गया है।

दलित साहित्य की उपस्थिति ने हिन्दी में दलित आलोचना का विकास कर दलित साहित्य प्रतिमानों को स्थापित किया। इस दृष्टि से दलित पत्राकारिता, अपने–अपने पिंजरः समीक्षातमक अध्ययन (मोहनदास नैमिशराय), दलित चिन्तन के विविध आयाम (अ.ला.ऊके), दलित साहित्य और सामाजिक न्याय (डॉ.पुरूषोततम सत्येप्रेमी), परिवर्तन जरूरी है, साहित्य और सामाजिक क्रांति (डॉ.दयानन्द बटरोही), दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य (कालीचरण स्नेही), हिन्दी साहित्य में दलित चेतना (डॉ. आनन्द भास्कर), मेरा दलित चिन्तन (डॉ.एम.सिंह), आज का दलित साहित्य (डॉ.तेज सिंह), दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (ओमप्रकाश वाल्मीकि), चिन्तन परम्परा और दलित साहित्य (डॉ.श्योराजसिंह बैचेन एवं डॉ.देवेन्द्र चौबे), दलित विमर्श साहित्य के आईने में (जयप्रकाश कर्दम), दलित साहित्य की भूमिका (हरपाल सिंह अरूष), दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर (विमल थोराट) आदि महत्वपूर्ण है। दलित साहित्य में अनुदित साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। मराठी से हिन्दी में हुए अनुदित साहित्य का विशेष महत्व है। दया पवार, शरण कुमार लिम्बाले, बेबी कांबले, लक्ष्मण गायकवाड़, किशोर शंता बाई काले, लक्ष्मण माने, दादा साहब मोरे, अरूण खोरे, अरूण ठाकुर, शंकर राव खरात आदि की रचनाएं हिन्दी में आने से दलित साहित्य का विस्तार हुआ है। दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य के प्रचार–प्रसार के लिए कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया है, जो इस दिशा में योगदान दे रही है। दलित विमर्श संबंधित पत्रिकाओं में हंस, युद्धरत आम आदमी (रमणिका गप्ता), दलित साहित्य (जयप्रकाश कर्दम), अम्बेडकर इन इडिया (दयानाथ निगम), दलित टूडे, मूक नायक, आश्वस्त (डॉ.तारा परमार), सामाजिक न्याय संदेश (मोहनदास नैमिशराय), पूर्वदवा (अवंतिका प्रसाद मर्मट) आदि पत्र–पत्रिकाएं है; जो दलित साहित्य के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रही है। शोध के क्षेत्र में दलित साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में कार्य किये जा रहे हैं।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि दलित साहित्य हमारे समाज की गलित परंपराओं और जातिवादी मानसिकता को मुंह तोड़ जवाब देने वाला साहित्य है। यह साहित्य परंपरागत साहित्य की कमजोरियों को उजागर करने वाला साहित्य है। हिन्दी में दलित साहित्य की परंपरा अब एक समृद्ध परंपरा बन गई है, जिसने परंपरागत सौंदर्यशास्त्र को नकार कर नया सौंदर्यशास्त्र व प्रतिमान गढ़े हैं। दलित साहित्य ने जहां दलित समाज को आवज दी है, भाषा दी है वहीं जो इसके प्रति नकार का भाव रखते हैं, उनको भी दलित साहित्य की स्वीकारोक्ति के लिए विवश किया है। निश्चय ही दलित विमर्श और दलित लेखन ने हिन्दी साहित्य को न केवल समृद्ध किया है अपितु उसे लोकतांत्रिक स्वरूप देकर पूर्णता प्रदान की है। जब तक हमारे समाज से जातिवादी जहर व जातिवादी मानसिकता खत्म नहीं होगी तब तक दलित साहित्य दलित समाज की आवाज बनकर आगे बढ़ता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, सं. पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद व राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2003 पृ.सं.16–17*
2. *महात्मा जोतिराव फुले : दर्शन और चिन्तन, डॉ. योगमाया, राजस्थान ग्रंथ अकादमी प्र.सं. 2004पृ.सं.52*
3. *श्रंखला A Multi-Disciplinary International Journal, फरवरी 2014 पृ.सं. 83*
4. *कथादेश : जनवरी 2007 दलित उत्पीड़न का वर्तमान, लेख बजरंग बिहारी तिवारी पृ.सं. 73*
5. *युद्धरत आम आम आदमी जुलाई–सितंबर2007 दामोदर मोरे पृष्ठ सं.65*
6. *सदियों के बहते जख्म : दामोदर मोरे, अ.भा.सा. परिषद, टैगोर नगर, विक्रोली (पूर्व) मुम्बई–400083 प्र. सं 2001, पृसं.144*
7. *सदियों के बहते जख़्म : दामोदर मोरे, अ.भा.सा. परिषद, टैगोर नगर, विक्रोली (पूर्व) मुम्बई–400083 प्र. सं 2001 पृसं.पृ. 96)*
8. *सदियों के बहते जख़्म : दामोदर मोरे, प्र.सं 2001, अ.भा.सा. परिषद, टैगोर नगर, विक्रोली (पूर्व) मुम्बई–400083 पृ. सं. 118*
9. *भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, सं. पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद व राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2003 दलित साहित्य और वैचारिकता, लेख बाबूराव बागुल पृ.सं.27*
10. *आदिवासी दस्तक : रमेशचन्द मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर प्रथम सं. 2013 पृसं. 138*
11. *श्रंखला A Multi-Disciplinary International Journal फरवरी 2014 पृ.सं. 83*
12. *पहल– अंक 84, सितंबर–अक्टुबर–नवंबर 2006, तेज सिंह का लेख– दलित साहित्य का सामाजिक चिन्तन पृ.सं. 77*
13. *सदियों के बहते जख्मः दामोदर मोरे, अखिल भारतीय साहित्य परिषद विक्रोली मुम्बई प्र.सं. 2001 पृ.सं.46*
14. *अंधा समाज और बहरे लोग– सोहनपाल सुमनाक्षर पृ. सं.17–18*
15. *दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार सं. रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउण्डेशन के लिए नव लेखन प्रकाशन, हजारीबाग–झारखण्ड द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2000 पृ.88*
16. *दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार सं. रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउण्डेशन ान के लिए नव लेखन प्रकाशन, हजारीबाग–झारखण्ड द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2000 पृ.88*
17. *दामोदर मोरे– सदियों के बहते जख़्म, प्र.सं 2001, अ.भा.सा. परिषद, टैगोर नगर, विक्रोली (पूर्व) मुम्बई–400083 पृ. 60*
18. *दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.सं.50*
19. *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र :शरण कुमार लिंबाले पृ.सं.20*
20. *भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, सं. पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद व राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2003 लेख 'दलित साहित्य बौद्धिक विमर्श के केन्द्र में है,' पृ.सं. 280–283*